अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २१ सितम्बर - २०२१ प्रकाशन - ०९

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

सितम्बर २०२१

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्यमध्यमाम्

अस्मदाचार्यपर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

विषय सूचि

सितम्बर 2021
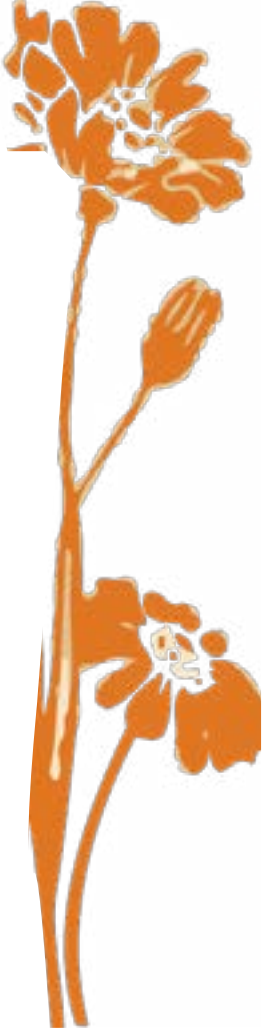
बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि
साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं
विना मोक्षो न सिध्यति।।

(आत्मबोध श्लोक : 2)

जिस प्रकार अग्नि भोजन पकाने के लिए प्रत्यक्ष साधन है, उसी प्रकार मोक्ष के लिए प्रत्यक्ष साधन ज्ञानमात्र है। बिना ज्ञान के मोक्ष कभी भी सम्भव नहीं होता।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

भोक्तृत्व की समाप्ति का रहस्य

समस्त कामनाओं का त्याग ही संन्यास व ज्ञान का लक्षण है। शास्त्र दीखाते है कि कामना को अपनी कमी का लक्षण देखें। क्योंकि कामना सदैव मैं के बारे में विपरीत धारणा की वजह से होती है। वहां अपने बारे में भोक्तृत्व का निश्चय है, तथा भोक्तृत्व ही कर्तृत्व को जन्म देता है। स्वयं को कर्ता-भोक्ता मानना ही अज्ञान व अविवेक है। अपने बारे में अपूर्णता का निश्चय होने से अपने अन्दर असुरक्षा/घूटन आदि रूप संसारित्व से युक्त है। तथा उसकी समाप्ति बाहरी अनुकुलता से करना चाहते है। किन्तु एक विवेकी व्यक्ति अपने अनुभवों से यह शिक्षा लेता है कि स्वर्गीय अनुकुलता के बावजूद कमी समाप्त नहीं होती है। संसाररूप रोग की निवृत्ति के लिए उसकी जड़ में जाने

भोक्तृत्व की समाप्ति का रहस्य

की आवश्यकता है। उसके लिए न तो भोग से पलायन करना है, और नहीं भोग को भोगना है। यह दोनों ही रोग की निवृत्ति नहीं करते है, किन्तु सतत रोग बनाए रखते है, तथा मन में विकृति लाता है। यदि पूर्णता की प्राप्ति भोक्तृत्व से प्रेरित है, तो यह भोक्तृत्व की निवृत्ति नहीं किन्तु भोक्ता को बनाए रखकर उसे ही तृप्त करेगी। भोक्ता को तृप्त करने से भोक्तृत्व ही दृढ होता है। इससे संसार की समाप्ति नहीं। भोक्तृत्व की निवृत्ति किसी कर्म का विषय नहीं है। अतः उसकी तृप्ति नहीं करनी, किन्तु उसे समझना है। इसके लिए यह निश्चय हो जाएं कि भोक्ता ही कल्पित व झूठा है।

भोक्ता को तृप्त करने के बजाय अपने भोक्तृत्व पर प्रश्नचिह्न लगना चाहिए। अपने भोक्तृत्व को तृप्त करना नहीं किन्तु उसके सत्य को समझना चाहते है कि इसका अस्तित्व कैसे हुआ। जो भी कल्पित है वो ही ज्ञान के द्वारा समाप्त होता है। भोक्तृत्व काल्पनिक सर्पस्थानीय है। इसे देखने पर यह मूलभूत परिवर्तन आता है। ज्ञान

भोक्तृत्व की समाप्ति का रहस्य

कल्पित अस्तित्व को समाप्त करता है। कल्पित अस्तित्व की समाप्ति में हमारी मनोस्थिति क्या होनी चाहिए। यदि ज्ञान के द्वारा भी भोक्तृत्व की तृप्ति होने लगती है तो संसार बना रहेगा। उसका अस्तित्व और भी दृढ होता जाता है। अत: कामना की समाप्ति कामना की तृप्ति की वजह से नहीं, किन्तु भोक्तृत्व की समाप्ति से होती है।

कामना की समाप्ति कामी की समाप्ति की वजह से होती है। कामी के रहते रहते खुश हो रहे हैं, संतुष्ट हो रहे हैं तो इसका मतलब कामना की पूर्ति हो रही है। कामना की पूर्ति जहां होने लगे, बाहर की अनुकुलता में तृप्ति होने लगे तो यह समस्या बन सकती है। क्योंकि समस्या बाहर नहीं, अपने अन्दर ही है। ज्ञान का प्रयोजन विशेष ज्ञानानन्द नहीं, किन्तु जीव को समाप्त करना है। भोक्ता होना जीवन में समस्या है।

'अपने बारे में अपूर्णता की धारणा ही भोक्तृत्व को जन्म देती है।'

भोक्तृत्व की समाप्ति का रहस्य

अत: कुछ भी करे वो भोक्तृत्व की तृप्ति के लिए नहीं किन्तु उसकी निवृत्ति के लिए हो। हमारी क्षूद्र अस्मिता की समाप्ति हो जाएं। परमाथदर्शी वह जो भोक्तृत्व की निवृत्ति कर चूका है, यह जानने के द्वारा कि यह निराधार व कल्पित है। जो परिच्छिन्न व क्षुद्र है, यह ही अनात्मा के धर्म है। उनके लिए अनुकुल-प्रतिकुल नहीं, किन्तु होने मात्र से आनन्द है। भोक्ता को तृप्त करने के द्वारा नहीं। भोक्ता का निषेध नवीन अकल्पनीय अग्राह्य अवस्था में जगाता है। यह विलक्षण अस्मिता परिपूर्ण अकल्पनीय कृतार्थता वाली है। ऐसी असिमता को पहचानने की वजह से कामना का अभाव होता है। सब से पहले भोक्तृत्व के उपर विचार करके उसे कल्पना देखते है। इसीसे कामी की समाप्ति होती है। और उसकी अन्तर्तम गहराई में मैं की तरह विराजमान असीम, अखण्ड, चिन्मयी सत्ता का विज्ञान होता है। उसके उपरान्त कामना अनावश्यक हो जाती है।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

धर्म का वास्तविक प्रसाद

धर्म का वास्तविक प्रसाद

वेदान्तज्ञान की पात्रता के लिए धर्मशास्त्र प्रबुद्धता जगाता है। कर्म अत्यन्त सामर्थ्यवान होता है, उसमें धर्म का समावेश करने से ज्ञान के पात्र बनते हैं। अन्यथा विनाश का हेतु बनता है। उसके लिए अपने वर्ण और आश्रम के धर्म का पालन किया जाना चाहिए।

वर्ण अर्थात् रंग, अपनी प्रकृति और आश्रम अर्थात् अवस्था। हमारी प्रकृति ही स्वधर्म होती है। भगवान ने हर व्यक्ति को विशिष्ट बनाया है, हर व्यक्ति अपने स्वधर्म से विशिष्ट होता है। स्वधर्म ईशप्रदत्त होने से अभिमान का विषय नहीं किन्तु उसे जगदीश्वर की आज्ञा जानकर धन्यता, स्वाभिमान, विनम्रता से दक्षतापूर्वक करते हुए पूजा बनाएं। और अपने प्रत्येक कर्म

धर्म का वास्तविक प्रसाद

को कलाकृति बनाएं। अपनी प्रकृति के अनुरूप कर्म हमारे प्रेम का विषय तथा ईशाज्ञा होने से फलासक्ति से मुक्त होते जाते हैं, वर्तमान में उपलब्धता, सृजनात्मकता, बुद्धिमत्ता का समावेश होता है। इस प्रकार कर्म करना ही पूजा है।

आश्रमानुरूप कर्म भी उनकी ही आज्ञा होने से उसे सौभाग्य जानते हुए धन्यता व प्रेम से करते हैं। हमारा कर्म समष्टियज्ञ में आहुति, सेवारूप है। उसे प्रेम व आत्मयीता से अपना सौभाग्य समझकर अन्त:प्रेरणारूप को भगवदाज्ञा जानकर जीते उसे करते हैं। इन सब में तपस्या का भी समावेश होता जाएं कि जहां हर परिस्थिति में कम से कम में संतुष्ट रह पाएं। उससे विविध आदतें व तज्जनित पराधीनता से मुक्त होकर स्वतंत्रता से बगैर शिकायत के, प्रसन्नता से जीना सीखते हैं। अपनी आवश्यकता कम करना तपस्या सीखाती है, उससे आत्मबल प्राप्त होकर सशक्तिकरण होता जाता है। आसक्ति आदि से मुक्त होकर अन्तर्मुख होते जाते हैं।

धर्म का वास्तविक प्रसाद

इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म तथा तपस का निर्वहन ईश्वर को केन्द्र में रखकर गुरु व अपने आदरण ीय की प्रसन्नता के लिए हो रहा है। कर्म में ऐसा रवैया ही धर्म का प्राण है। उससे स्वकेन्द्रिता और उसके दोषों से मुक्त होते जाते है। इस प्रकार से कर्म के दो फल - दृष्ट व अदृष्ट। दृष्टफल यह कि कर्मफल अच्छा तथा सब के संतुष्टि का हेतु होता है। साथ ही अभ्युदय की सिद्धि होती जाती है।

'धर्म का वास्तविक प्रसाद साधन चतुष्टय सम्पन्न होना है।'

उसका अदृष्टफल नि:श्रेयस के हेतुभूत वैराग्यादि साधन की सिद्धि है। आसक्ति, राग-द्वेष की पराधीनता से मुक्त होने से संवेदना, सूक्ष्मता व विचारशीलता से युक्त होते हैं, उसके कारण तटस्थता से जगत की विविध अनुभूतियों को निकटता से देखने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।

धर्म का वास्तविक प्रसाद

दुनिया को निकटता से क्षणिकतादि दोष देखने की वजह से कामना का वेग शान्त होने लगता है। यह परिपक्वता का लक्षण है। राग-द्वेष की आंधी खतम होने पर ही विवेक, सूक्ष्म चिन्तन का सामर्थ्य, शमादि गुण जगने लगते है।

तब यह देख पाते है कि अपने संकुचित अस्तित्व की वजह से घूटन का अनुभव हो रहा है, यही हमारे जन्मादि का पर्याय बना हुआ है। आसक्ति आदि से युक्त भयभीत होकर जीते है। यही संसार का हेतु बना है। मुक्ति अपने छोटेपन से होती है। यही मुमुक्षुत्व से युक्त करता है। ऐसा साधन चतुष्टय सम्पन्न होने पर ही वेदान्त विज्ञान के पात्र बनते है। इस प्रकार साधन चतुष्टय सम्पन्न होना ही धर्म का वास्तविक प्रसाद है।

हाथों का भूषण कंगन नहीं
- किन्तु सेवा और दान है।

कर्ण का भूषण कुण्डल नहीं,
- प्रभु की कथा-महिमा का श्रवण है।

वीरों का भूषण बाहुबल ही नहीं
- किन्तु क्षमा है।

ब्रह्मचारी की शोभा शिखा-सूत्र मात्र से नहीं,
- किन्तु नियम पालन और संयम से है।

गृहस्थ की शोभा घर-परिवार से नहीं,
- किन्तु दान और सेवा से है।

वानप्रस्थ की शोभा निवृत्ति मात्र से नही,
- किन्तु प्रभु भजन से है।

संन्यासी की शोभा गेरुआ वस्त्र से नहीं,
- किन्तु ज्ञान और वैराग्य से है।

दृग्दृश्यविवेक

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

स्तब्धीभावो रसास्वादात्
तृतीयं पूर्ववन्मतः।
एतैस्समाधिभिः षड्भिः
नयेत्कालं निरन्तरम्।।

'जब स्वानुभूति के रसास्वादन से स्तब्धीभाव तुल्य अवस्था होती है, तब वह तीसरे प्रकार की अर्थात् निर्विकल्प समाधि हो जाती है। इस प्रकार छह समाधि के अभ्यास में अपना काल व्यतीत करना चाहिये।

दृग्दृश्यविवेक

आचार्य ने निदिध्यासन का प्रकरण आरम्भ करते हुए सविकल्प और निर्विकल्प समाधि तथा उसमें दो प्रकार की समाधि अन्त: और बाह्य समाधि बताई। उसकी प्रक्रिया को भी विस्तार से वर्गीकरण करते हुए बताया।

जब कोई अन्त: और बाह्य समाधि का शास्त्रोक्त ढंग से आश्रय लेता है, तो समस्त नामरूपात्मक उपाधियों के भेद से परे अखण्ड एकरस, अनन्त सत्ता में जगता है। वहां अब अन्दर, बाहर का भेद अर्थात् खण्ड भी समाप्त हो गया। अब एक अखण्ड एकरस सत्तामात्र है। यह सत्ता ही सत्स्वरूप अर्थात् सदैव विराजमान, अबाधित तत्त्व है। इसे जानने वा प्रकाशित करनेवाली चेतना उनसे भिन्न नहीं है। यह

दृग्दृश्य विवेक

सच्चिदानन्द स्वरूप हम ही विराजमान है। इस प्रकार शास्त्रोक्त लक्षणा पर विचार करके अपनी अखण्ड, सच्चिदानन्द स्वरूपता में स्थिति होना यह शब्दानुविद्ध, सविकल्प समाधि है।

'निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति प्रसादरूपा होती है।'

इस प्रकार क्रमशः समाधि का अभ्यास करना एक अध्यात्म जिज्ञासु के लिए विधानरूप होता है। इसका क्रमशः अभ्यास करते हुए अपने समय को यापन करना बताया जाता हैं। इस प्रकार के अभ्यास से जब चित्त अपने स्वस्वरूप में समाहित होता है, तो विलक्षण आनन्द की अनुभूति होती है। जिसकी तुलना किसी विषयानन्द से नहीं की जा सकती है। क्योंकि परमात्मा स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। उस अवस्था में न कोई कामना है, और न कोई विक्षेप। जो कामना के हेतुभूत कामी था, उसका ही निषेध हो गया और समस्त विषय-विषयी के भेद की

दृग्दृश्य विवेक

समाप्ति हो गई। यह अवस्था अत्यन्त आह्लाद की अवस्था होती है। यह समाधि के सतत अभ्यास की वजह से प्राप्त अवस्था है। जैसे जैसे अभ्यास की निरन्तरता और तीव्रता होती जाती है। तब सूक्ष्म रूप से विराजमान भोक्ता जो रसास्वादन कर रहा था, वह भी विवेक की अग्नि में बाधित हो जाता है और स्तब्धीभाव का अनुभव होता है। इस स्तब्धीभाव में अब होना मात्र है। न कोई रसास्वादन है और न रसास्वाद लेने वाला। इस होने मात्र की अवस्था में मानों मैं की अवेरनेस भी नहीं है। क्योंकि मैं की अवेरनेस होने में अन्त:करण की अपेक्षा है। अन्त:करण भी अब बाधित हो गया है, जहां एक अखण्ड सत्तामात्र विराजमान है। यह योगियों की निर्विकल्प अवस्था है। यह अवस्था समाधि के अभ्यास से प्रसादरूप से प्राप्त

दृग्दृश्य विवेक

होती है। समाधि का अभ्यास करके उसको अवश्य प्राप्त करना चाहिए। किन्तु अभ्यास में भी महत्व इस निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति का नहीं हो, अपितु विवेक करके स्वस्वरूप में जाग्रति का होना चाहिए। इस प्रकार उक्त छह समाधि का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। समाधि की कर्तव्यता का विधान करके आचार्य ने समाधि के प्रसंग को समाप्त किया। अब उसकी फलश्रुति आगे के दो श्लोकों में बताते हैं।

गीता अध्याय : 7

ज्ञान विज्ञान योग

ज्ञान विज्ञान योग

गीता के सातवें अध्याय का नाम ज्ञान विज्ञान योग है। इस अध्याय में ३० श्लोक हैं। पूर्व अध्याय में भगवान ने ध्यान का रहस्य बताया तथा कर्मयोग के सन्दर्भ में चर्चा करी। कर्मयोग आत्मज्ञान के लिए व्यवहार में सकारात्मकता, सूक्ष्मता, समत्वादिरूप पात्रता प्रदान करता है। जिस मन से व्यवहार करते हैं, उसी मन से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

अत: कर्मक्षेत्र में कर्मफलासक्ति से मुक्त होकर प्रसन्नता से युक्त, जाग्रति हेतु अभ्यास करना चाहिए। भगवान की सन्निधि का अनुभव करते हुए धन्यता, समग्रता व समत्व से युक्त होकर जो जीता है, उसका ध्यान भी सुन्दर, विक्षेप रहित होता है। ध्यान अपने अन्दर संज्ञान

ज्ञान विज्ञान योग

हेतु अन्तरंग साधन है। जैसे जैसे रुचि बढ़ती है, उसका महत्व भी बढ़ता जाता है। ध्यान का प्रयोजन मन को शान्त कर, अपने सत्य को जानकर उसमें स्थित होना है। कर्मक्षेत्र में भी कर्म करते हुए परमात्मा का संज्ञान बना रहे कि वे हमारे हृदय में विराजमान हैं। वे अत्यन्त ज्ञानवान, अद्भुत शक्तिमान्, करुणानिधान हैं। वे ही जगत के सृष्टा, तथा उसके पीछे व्यवस्थापक, संचालक आदि के रूप में विराजमान है। कर्मयोग में परमात्मा के अस्तित्व के प्रति ध्यान होना पर्याप्त है। उन दिव्य महान सत्ता के स्मरण मात्र से, उनकी अवेरनेस से समस्त चिन्ता, असुरक्षादि समाप्त होते है और निर्भीक होते जाते हैं। एकाकीपन की घूटन समाप्त होती है। वे सतत कृपा की वर्षा कर रहे हैं। अपना जीवित होना ही आश्चर्य है, यह उन्हींका कृपाप्रसाद है, इसे देखना व गहराई से अनुभव करना चाहिए। समस्त जीवन की उपलब्धियां उन्हीं

ज्ञान विज्ञान योग

की कृपा से है। सृष्टि को देखकर सृष्टा की ही महिमा ज्ञात होती है।

'हमारा होना ही ईश्वर का सब से महान कृपाप्रसाद है।'

जैसे जैसे महिमा से अवगत होकर उसे अनुभव करते जाते हैं, वैसे वैसे मन सुन्दर, सात्विक, निर्मल होता जाता है। ऐसे मन में स्वाभाविक प्रश्न होता है कि उनका वास्तविक स्वरूप क्या है! यद्यपि सब ईशावास्यम् अर्थात् उन्हींके द्वारा व्याप्त है। सब परमात्मा की ही अभिव्यक्तियां, अवतार भी उनकी अभिव्यक्ति, उनका चोला मात्र है। अतः यह सत्य नहीं है। उनके प्रति भी पूजादि के माध्यम से भावना की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। किन्तु साथ ही यह जिज्ञासा भी हो कि इस चोले को धारण करने के पूर्व वे क्या थे? वे कैसे हैं, कौन है, उनका स्वरूप क्या है? यह स्वाभाविक जिज्ञासा का विषय बनता है। ऐसे जिज्ञासु के लिए भगवान इस अध्याय में बता रहे हैं।

ज्ञान विज्ञान योग

भगवान हमारी ही भाषा का प्रयोग करके बता रहे हैं कि जो हमारा भक्त, हममें आसक्त है। अधिकतर संसार के प्रति सम्बन्ध पराधीनता व आसक्ति के होते हैं। प्रेम में अपने बारे में चिन्ता व पराधीनतादि का अभाव होता है। किन्तु आसक्ति उससे विपरीत है। जीव संकुचिता से युक्त होने से उनमें आसक्ति स्वाभाविक हैं। जब उचित शिक्षा प्राप्त होती है तो आसक्ति प्रेम में परिवर्तित होती है। जब आसक्ति अन्य की खुशी की प्रधानता से होने लगें तो आसक्ति प्रेम में परिवर्तित होने लगती है। जैसी संसार के प्रति आसक्ति है, वैसी ही भगवान के प्रति आसक्ति से ही आरम्भ करें। यह कल्याणकारी व भक्ति की साधना है। वे ही उसके परे जाने का ज्ञान प्रदान करते हैं। यथा अग्नि के पास जाने पर उष्णता प्राप्त होती है। वैसे ही भगवान के पास जाने पर वे ज्ञान प्रदान करते हैं।

ज्ञान विज्ञान योग

भगवान बताते हैं कि जो हममें आसक्तमना है, उन्हें हम अशेषत: विज्ञानसहित ज्ञान बता रहे हैं। ज्ञान में बौद्धिक स्पष्टता होती है। तथा विज्ञान का अभिप्राय यह ज्ञान हमारे अनुभव का विषय हो जाएं। एवं समझ को ज्ञान, साक्षात्कार को विज्ञान कहा। उसका प्रयोजन बताते हैं कि उसे जानने पर कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता है। उससे सब के रहस्य को तुम जान लोगे। जिस प्रकार एक लहर के ज्ञान से समस्त लहरों का सत्य ज्ञात हो जाता है।

'आसक्ति में स्वकेन्द्रिता और प्रेम में परकेन्द्रिता होती है।'

भगवान ज्ञान की स्तुति करते हुए बताते हैं कि हजारों मनुष्यों में कोई ही श्रद्धा से युक्त होता है, तथा उसमें से कोई वीरला ही जान पाता है। अधिकतर किसी छोटे अंश को जानकर धन्य हो जाने से आगे की यात्रा कुण्ठित हो जाती है। अत: उनमें से कोई वीरले ही तत्वत: हमें

ज्ञान विज्ञान योग

जानते है। भगवान ज्ञान देते हुए सब से पहले अपनी दो प्रकृति के बारे में बताते हैं। किसी को जानने के लिए उसके सृजन को, उनकी कलाकृति को जानना चाहिए। वैसे ही परमात्मा के ज्ञान के लिए इन दो प्रकृति को जानें। उनसे उनकी महिमा के बारे में अनुमान कर सकते है।

यह दो प्रकृति अपरा और परा है। अपरा प्रकृति पंचमहाभूत, इन्द्रियों के पांच विषय, मन, बुद्धि अहंकाररूप - इन आठ चीजों की हैं। यह नश्वर, अशाश्वत, सतही होने से मिथ्या है। इन अपरा से विलक्षण जो परा प्रकृति है, वह कल्याणकारी है। उसके बारे में भगवान बताते हैं कि, जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्। यह मैं कौन जो सबको धारण करता है। वस्तुत: चेतन सत्ता जो मैं की तरह अभिव्यक्त वह जीव-चेतनवान सत्ता ही पराप्रकृति है। उसके प्रति ध्यान मोड़ने पर ही कल्याण होता है। यह अपरा की अपेक्षा

ज्ञान विज्ञान योग

स्थायी है। उस पर चिन्तन करके उनकी गहराई में, अन्तरात्मा की तरह विराजमान परमात्मा का साक्षात्कार होता है। यह दोनो मिलकर जगत बनाते है। यह हमारी प्रकृति है, हम उनसे परे, उनके स्वामी की तरह विराजमान है। जहां पर भी प्रकृति होती है, वहां हम होते ही है। प्रकृति की गहराई में, उसका सत्य परमात्मा, अधिष्ठान रूप से विराजमान है। इन परा और अपरा के अधिष्ठान का अन्वेषण करना चाहिए। परा अर्थात् जीव पर विचार करने पर सत्य की प्राप्ति होती है। जो अविनाशी, अनन्त है, जीवरूप से भी वे ही है, किन्तु संकुचिता धारण करने पर जीव कहलाते हैं। यह परमात्मा, जो कि समस्त देवी-देवता के भी अधिष्ठानरूप से विराजमान हैं। एवं अपरा प्रकृति से ईश्वर का अस्तित्व देखकर परा प्रकृति की गहराई में जाकर अन्वेषण करना चाहिए।

'अपरा प्रकृति से परमात्मा को अस्ति की तरह जाना जाता हैं।'

ज्ञान विज्ञान योग

भगवान बताते हैं कि हम परा, अपरा आदि सब को धारण करके उसे व्याप्त करते हैं। हम से परे कुछ भी नहीं हैं। सब हममें उसी तरह ओत प्रोत है, जैसे सूत्रे मणिगणा इव। भगवान के बारे में इस प्रकार की ही दृष्टि होनी चाहिए। जिसे यह अर्थ पता लगा उसे आगे बताते हैं कि भगवान कैसे सबको व्याप्त करते है! रसो अहमप्सु...। जल में रस तत्त्व, सूर्य-चन्द्र का प्रकाश हम हैं। आकाश में शब्द आदि रूप से सर्वत्र हम ही हैं। ऐसी अनेकों विविध विभूतियां, अभिव्यक्तियां बताते हैं। और कहते हैं कि हम सात्विक, राजसी वा तामसी रूप मायारचित सम्पूर्ण जगत में व्याप्त हैं। ये सब हम पर आश्रित हैं, किन्तु हम उन पर आश्रित नहीं है। हम स्वतंत्र हैं। इस प्रकार जो जानता है, वही समग्रता से, तात्विक ज्ञान रखता है।

किन्तु सब लोग हमें नहीं जानते हैं कि, हम इन सबसे परे अव्यय

ज्ञान विज्ञान योग

तत्व हैं। क्योंकि हमारी त्रिगुणात्मिका माया बहुत दुरत्यय है। उसीसे सब मोहित है। जिसका ज्ञान हमारी ओर मोडता है, वह नहीं फंसता है। जब प्यासी दृष्टि से प्रकृति को देखते हैं, तब ही उसमें फंसते है।

'जो भगवान के प्रति शरणागत होता है, वही माया से परे जाता है।'

जो अभिमानी, क्षुद्रबुद्धि, शरणागत नहीं होता है, वह मनुष्य में अधम, आसुरी भाव से युक्त है। वह सदैव बहिर्मुख, अपनी चिन्तादि से युक्त उलजा होने से देखने में असमर्थ है। किन्तु हमारे चार प्रकार के भक्त हैं, वे पुण्यात्मा व श्रद्धा से युक्त है। वे आर्त – जो अपने दुःख को दूर करने हेतु, हमे समर्थ जानते हुए हमारे प्रति शरणागत होता है। दूसरा अर्थार्थी – जो बाह्य उपलब्धियों का इच्छुक है, किन्तु हमारे प्रति प्रेम, आस्था से युक्त है। बडप्पन, विनम्रता से युक्त होता है। तीसरा जिज्ञासु जो हमारे विषयक

ज्ञान विज्ञान योग

जिज्ञासा से युक्त है। उन सब में हमारे प्रति प्रेम व श्रद्धा विराजमान है। किन्तु उन सब से विलक्षण चौथा ज्ञानवान है, वह तो हमारी आत्मा हैं। क्योंकि उन्होंने हमें अपनी आत्मा की तरह जान लिया है। इस प्रकार ईश्वर की दिव्यता देखकर गुणकीर्तनं करता है। वह दिव्यस्वरूप में रत है। वे हमें अत्यन्त प्रिय है।

वह जानता हैं कि वासुदेवः सर्वम् इति। हम दुर्लभ नहीं हैं, किन्तु हमें इस प्रकार जाननेवाला ज्ञानी दुर्लभ है। क्योंकि जीवभाव की संकुचिता से युक्त अज्ञानी जीव कामनाओं से आसक्त होकर काम वासना से भ्रमित होता है। और क्षूद्र देवताओं की आराधना करके क्षूद्र विषयभोग की ही मांग करता है। उन देवता रूप से हम ही विराजमान रहते हुए उन्हें आशीर्वाद देते हैं। उनको बल, सामर्थ्यादि हम ही देते हैं। हम उनकी श्रद्धा को दृढ़ व अचल करते हैं। उससे वह यात्रा में आगे बढ़ता है।

ज्ञान विज्ञान योग

उन छोटे-छोटे देवता, जो शक्ति आदि के युक्त है, उस रूप में हम ही हैं। किन्तु वह हमें संकुचित देवता के रूप में ही देखता है। अतः उनकी गति वहीं तक सीमित होती है। समान पुरुषार्थ होने पर भी वह देवता तक ही पहुंचता है, किन्तु जो मेरा यजन करता है, वह मुझे ही प्राप्त करता है। परमात्मा के प्रति भक्ति व उनका महत्व बढ़ने पर ही उनके साक्षात्कार की साधना होती है।

'ईश्वर की भक्ति व महत्व बढ़ने से उनकी प्राप्ति की यात्रा प्रशस्त होती है।'

हम मूलरूप से अव्यक्त, अविनाशी, अव्ययात्मा हैं। किन्तु मूढ़ व्यक्ति हमारे इस सत्य को नहीं जानते हुए हमें व्यक्ति के रूप मे ही जानकर संकुचित कर देता है। हम सब के लिए अपने इस मूलस्वरूप से ज्ञात नहीं होते हैं। किन्तु जो पुण्यात्मा, शरणागत होता है, उनके प्रति स्वयं को शिथिल कर देते हैं। उसके लिए पहले मन के राग-द्वेष आदि विकारों से निपटना चाहिए।

ज्ञान विज्ञान योग

निष्कामता से युक्त होकर, हमारे प्रति कर्म का समर्पण करने पर द्वन्द्वों से मुक्त होकर अन्तर्मुख होते है और इस सूक्ष्म ज्ञान और विज्ञान के पात्र बनते है। तब ज्ञान और विज्ञान का प्रसाद प्राप्त होता है।

वही अन्तत: अधिभूत, अधिदैव, आदि भौतिक आदि को तथा ब्रह्म, कर्म आदि को समग्रता से जान लेता है। अत: जरामरण से मोक्ष के लिए हमारे प्रति आश्रित होकर यजन करता हैं, तो मृत्यु की पीडा से भी मुक्त हो जाता है। तथा जीवन रहते रहते दिव्य सत्ता में जग जाता है। इसमें जाग्रति ही कल्याणकारी है। इति सप्तमो अध्याय।

विभूति दर्शन

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

—१२—

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

लक्ष्मणजी की दृष्टि में धनुर्भंग और प्रभु का सीताजी के विवाह का कहीं कोई सम्बन्ध ही नहीं है। वे यह भली भांति जानते हैं कि इनका विवाह शाश्वत सत्य है। वह होना नहीं है, अपितु हो चुका है। उन्हें तो चिर-दम्पति को लेकर तत्त्वज्ञ जनक की चिन्ता को देखकर आश्चर्य होता है। उन्हें लगा कि वस्तुतः धनुर्भंग से भी अधिक आवश्यक है महाराज जनक का भ्रमभंग। और वे इन वाक्यों के द्वारा उनकी भ्रान्ति पर ही प्रहार करते हैं। वस्तुतः प्रभु से आदेश लेने को तात्पर्य भी यही था कि अब तक धनुर्भंग के मूल में जनक की प्रतिज्ञा थी और वे अब अपनी ओर से यह आयोजन समाप्त कर चुके हैं। 'तजहु आस निज निज गृह जाहू' में यह घोषणा हो चुकी है। जिनके मन में उस प्रतिज्ञा

श्री लक्ष्मण चरित्र

के परिणाम का प्रलोभन था; वे भी प्रयास कर चुके। किन्तु अब जनक की इस भ्रान्ति का निवारण हो जाना चाहिए कि पृथ्वी वीरों से शून्य हो चुकी है। इससे उनकी इस मान्यता का भी खण्डन हो जाएगा कि, कोई ऐसा व्यक्ति हो ही नहीं सकता कि जिनके मन में मैथिली के सौन्दर्य और विश्व-विजय का प्रलोभन न हो। इसका तात्पर्य यही है कि वैराग्य और समर्पण केवल उन्हींके चरित्र का गुण नहीं है। इसीलिए वे धनुर्भंग के लिए जनक से आदेश न मांगकर प्रभु से आज्ञा की याचना करते हैं। इसके साथ वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि इस धनुर्भंग में भी उनका बल वा पुरुषार्थ नहीं होगा। वे तो केवल प्रभु-प्रताप के प्रकटीकरण के माध्यम होंगें।

वे जनक के समक्ष जिन वचनों का प्रयोग करते हैं; उनके माध्यम से एक तो श्री रामभद्र के ईश्वरीय रूप को इंगित करते हैं तथा रघुवंश के अनादर से अपनी क्षुब्धता को प्रकट कर रहे हैं और प्रभु उनके लिए रघुकुलमणि हैं। अन्त में यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि यदि रामभद्र

श्री लक्ष्मण चरित्र

केवल रघुवंश शिरोमणि होते तो भी जनक की वाणी अनौचित्यपूर्ण मानी जाती, पर वे तो साक्षात् ईश्वर हैं और उनके प्रताप और बल का आश्रय लेनेवाला भी धनुर्भंग जैसा कार्य कर सकता है, फिर स्वयं उनके विषय में तो कहना ही क्या? इस तरह अपने भाषण के द्व ारा लक्ष्मण धनुर्भंग के सारे प्रसंग को ही भिन्न धरातल पर खड़ा कर देते हैं। वे जिस भूमिका में खड़े होकर बोल रहे थे, उनके समक्ष जनक जैसा तत्त्वज्ञ भी अल्पज्ञ जैसा प्रतीत हो रहा था। लक्ष्मण की इस उंचाई को देखकर ही मैथिली, रामभद्र और महर्षि गद्गद हो उठे थे। उनका उद्देश्य धनुर्भंग न होकर जनक के भ्रम का निवारण मात्र था।

–१६–

ऋषीकेश
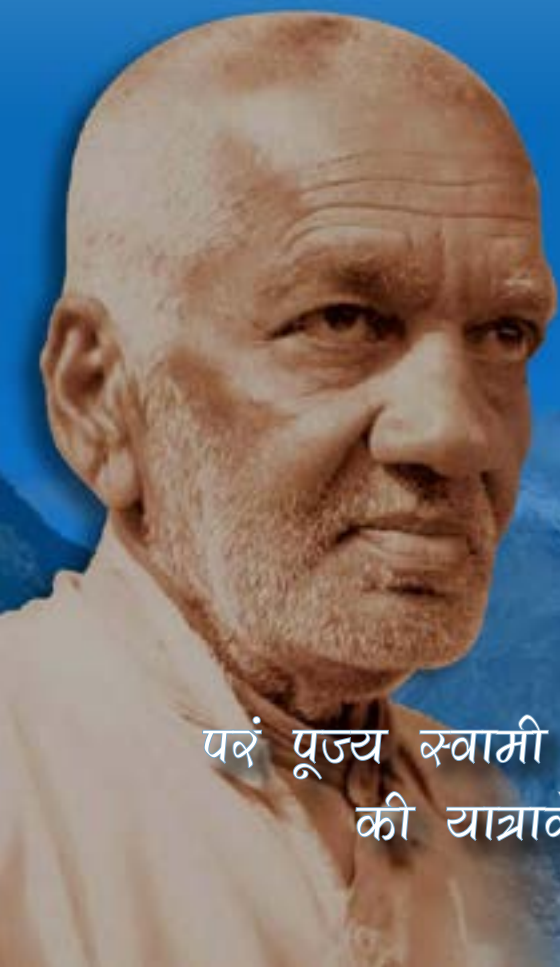
परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण
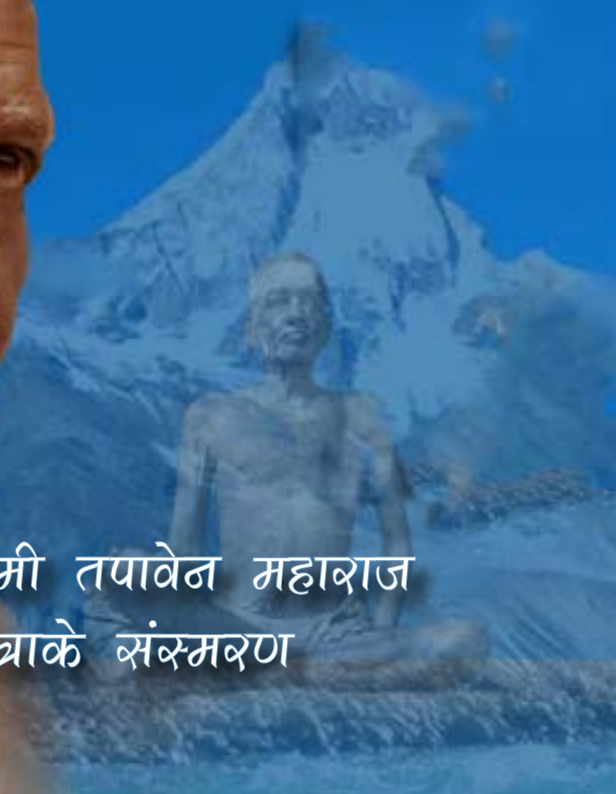
ह्रषीकेश से यों छः सात मील निबिड वनान्तरों से उपर की ओर चढते जाएं तो 'नरेन्द्र नगर' नामक स्थान उपलब्ध होता है। यह 'टहरी' नामक स्थान इन हिमालय प्रदेशों के राजा के सुखवास की एक रमणीय भूमि है। यहां से पर्वत शिखरों से होकर टेढ़ा मेढ़ा रास्ता सर्पाकृति में पश्चिमोत्तरी दिशा में जा रहा है। नरेन्द्रनगर से बारह मील की दूरी पर स्थित 'पूक्कोट' नामक प्रसिद्ध स्थान है। ऐसा कहा जाता है कि इस स्थान पर पर्वतों में चीते रहते हैं। यद्यपि मैं उस रास्ते से कभी कभी अकेले यात्रा करता था, तथापि मुझे तो किसी चीते के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला है। हिमालय के पुण्यात्मा

जीवन्मुक्त

व्याघ्र कैसे पापात्माओं की नजरों में आ सकते है? अथवा यह भी विचार मेरे मन में आता है कि शायद मेरे सुकृत परिपाक से देवात्मा हिमालय ने शार्दूलों को लाकर मेरे सामने विघ्न उपस्थित न करने की कृपा की हो और इसलिए मुझे उनका दर्शन न मिला हो। पर्वत के प्रांत भागों के वनों से होकर मार्ग फिर भी आगे उपर की ओर बढता जा रहा है। इस प्रकार वन शैलों और शैल नितंबों में इधर उधर स्थित कई गांवों को पार करके पच्चीस मील की यात्रा करने पर पतित पावनी परम देवता भागीरथी के दर्शन उपलब्ध होते है। हृषीकेश में बिछुडी हुई जाह्नवी माता यहा फिर भी अक्षि पक्षों में प्रत्यक्ष होकर आशीर्वाद देती हैं।

अहा! हिमालय के अन्दर नित्य निर्मल तथा नितान्त सुन्दर होकर प्रवाहित गंगा का केवल दर्शन ही कितना आनन्ददायक है। हे गंगे! हे देवी! हे जगज्जननी! तुम्हारी सुन्दरता तथा तुम्हारी महिमा का व्यास प्रभृति महर्षि पुंगवों ने उंची आवाज में जो गान किया है; उसका

रहस्य तुम्हारे पास आकर तुम्हारे चरण कमलों की परिचर्या करनेवालों को छोड दूसरे जन कैसे जान सकते है?

गंगा के उस पार टहरीनरेश की मुख्य राजधानी 'टहरी' नामक नगर स्थित है। नगर कहने से उसे बहुजन समाकुल और बहुत ही परिष्कृत कोई महानगर नही समझना चाहिए। थोडे से लोग, इने गिने मकानों, थोडे से व्यापारों और व्यवहारों के साथ यह एक छोटा सा प्रशान्त नगर है। वह अनाडम्बर एवं अविस्तृत होने पर भी बडा ही रमणीय है। उंचे पर्वतों से आवृत भागीरथी गंगा तथा उसकी पोषक नद 'बिल्वगण' गंगा के बीच, समुद्र की सतह से दो हजार दो सौ पचहत्तर फुट उंचाई पर स्थित यह पर्वतनगर प्राकृतिक शोभा के क्रीडास्थल के रूप में विराजित है। उत्तरकाशी की ओर यात्रा करने वालों को गंगा पार कर टहरी नगर में प्रवेश करने की आवश्यकता नही होती, तो भी मैं केवल कौतुहलवश यहां जाकर रहा था।

पौराणिक गाथा

प्रथम पूज्य गणेश

शिवपुराण में एक प्रसंग आता है कि एक समय देवता और असुरों में विवाद छिड़ गया कि किसी भी यज्ञादि में प्रथम आहुति किसे प्राप्त होनी चाहिए। सभी अपने आपको इसके योग्य समझ रहे थे। विवाद बढ़ता गया किन्तु कोई निर्णय नहीं हो पाया। तब सभी देवता इसके समाधान हेतु महादेवजी के पास पहुंचें। महादेव ने योग्यता हेतु एक स्पर्धा आयोजित करने को कहा कि, जो भी विश्व की सर्व प्रथम परिक्रमा पूरी करेगा वही प्रथम पूज्य होगा।

सब देवतागण, देवसेनापति कार्तिकेय तथा गणेशजी आदि सब स्पर्धा हेतु सुसज्ज हो गएं। स्पर्धा आरम्भ हुई, सभी विश्व की परिक्रमा हेतु निकल पडें। गणेशजी ने सोचा कि, मेरा तो प्रतिदिन महादेव की पूजा करना, यह नियम है। अत: उसे हमें पहले पूरा करना होगा। यह सोचकर गणेशजी पार्थिवलिंग बनाकर उसकी सेवा पूजा में लग गएं।

प्रथम पूज्य गणेश

पूजा सम्पन्न होने पर उन्होंने देखा कि, सभी देवतागण अपने अपने दायित्व को त्यागकर इस स्पर्धा के लिए नीकल पडे है, उस वजह से सृष्टि में अव्यवस्था हो रही है। सूर्य व चन्द्रदेव भी अपने दायित्वों को त्यागने की वजह से सृष्टि में चारों ओर अंधेरा छाया हुआ है।

अत: अपने विवेक का प्रयोग करते हुए उन्होंने कैलास पर दीप प्रज्ज्वलित कर दिया, जिससे समस्त सृष्टि मे पुन: प्रकाश छा गया। सृष्टि के प्रति संवेदनशील होते हुए उसकी पूरी व्यवस्था करके वे अपने वाहन मूषक पर सवार होकर माता पार्वती और महादेवजी के पास पहुंचे और उनकी तीन बार परिक्रमा पूरी की। माता पार्वती ने उनसे पूछा कि, पुत्र! तुम स्पर्धा हेतु गए नहीं! गणेशजी ने सुन्दर उत्तर देते हुए कहा कि, 'माता! मेरी दुनिया तो आप और पिताजी ही है। और सभी देवतागण स्पर्धा के लिए नीकले हैं, अत: सृष्टि में सन्तुलन बनाए रखने हेतु उनके दायित्वों का हम निर्वाह कर रहे हैं।' यह सुनकर महादेवजी और माता पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुएं।

जब स्पर्धा समाप्त करके सब देवतादि गण लौटें, तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा तीनों देवीमाता ने अपना निर्णय सुनाया कि प्रथम पूज्य के लिए योग्य गणेश ही हैं। यह सुनकर

प्रथम पूज्य गणेश

सब ने उसका विरोध किया कि गणेश ने तो प्रतिस्पर्धा में हिस्सा लिया ही नहीं, फिर वे स्पर्धा को जीते बगैर कैसे प्रथम पूज्य हो सकते हैं?

इस पर त्रिदेवों ने बताया कि, जो भी अन्य को पीछे छोड़कर आगे नीकलना चाहें, जो अपने दायित्व से विमुख होकर किसी पद के लिए लालायित होता हैं, उसीसे प्रथमपूज्य होने की योग्यता से विहीन होता है। गणेश ने न केवल अपने धर्म व दायित्व का निर्वाह किया, अपितु जब सब देवतागण अपने अपने कर्तव्य को त्यागकर प्रतिस्पर्धा में सम्मिलित हुएं, तब गणेश ने सृष्टि के सुचारू संचालन हेतु उनके भी दायित्वों को बखूबी निभाया और सृष्टि में हो रही अव्यवस्था को रोका। यही उनकी योग्यता का प्रमाण है। यह सुनकर समस्त देवताओं ने सर्वानुमति से यह स्वीकार किया और अपने दायित्व को त्यागने तथा प्रथम पूज्य पद के लिए लालायिता के लिए शर्मिन्दा हुएं। इस प्रकार गणेशजी को प्रथम पूज्य का स्थान प्राप्त हुआ।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

लखनऊ में सत्संग / ३ अगस्त २०२१

आश्रम समाचार

स्व. कर्नल पंकज मिश्रा के निवास पर पूज्य गुरुजी का सत्संग

आश्रम समाचार

स्व. कर्नल पंकज मिश्रा को श्रद्धांजलि
३ अगस्त २०२१

आश्रम समाचार

पूज्य स्वामिनीजी का जन्मदिन

श्री गंगेश्वर महादेव का पूजन

आश्रम समाचार

पू. स्वामिनीजी द्वारा
पूज्य गुरुजी का पूजन

८ अगस्त २०२१

आश्रम समाचार

पू. स्वामिनीजी का जन्मदिनउत्सव

आश्रम समाचार

भक्तों द्वारा प्रेम-आदर की अभिव्यक्ति
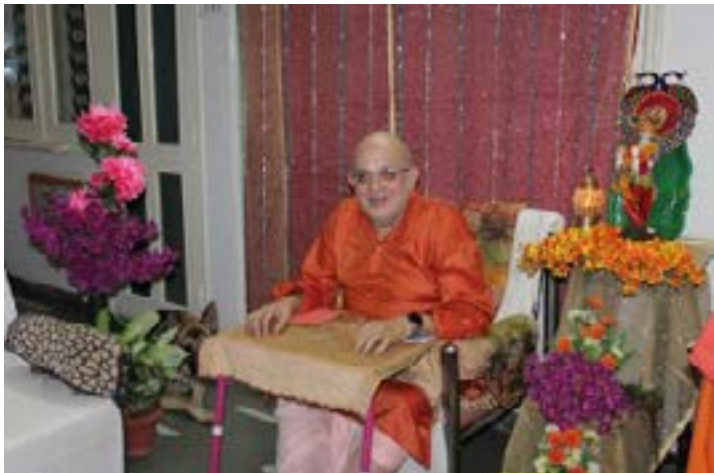
आश्रम समाचार

८ अगस्त २०२१

जन्मदिन उत्सव

आश्रम समाचार

८ अगस्त
२०२१

आश्रम समाचार

१५ अगस्त २०२१

आश्रम में झण्डावन्दन

आश्रम समाचार

१५ अगस्त
२०२१

वन्दे मातरम्

जयहिन्द

आश्रम समाचार

रक्षाबन्धन पर्व

त्वमेव सर्वं मम देवदेव

आश्रम समाचार

रक्षाबन्धन पर्व

२२ अगस्त
२०२१

आश्रम समाचार

गंगेश्वर महादेव

१६ अगस्त २०२१

आश्रम समाचार

16th Aug 2021

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव

सावन सोमवार पर झांकी दर्शन

आश्रम समाचार

हनुमान चालीसा

पाठ कार्यक्रम

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

ब्र. भरत के द्वारा

हनुमान चालीसा पाठ कार्यक्रम

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- Sundar Kand Pravachan
- Monthly Satsang Videos
- Prerak Kahaniya
- Eksloki Pravachan
- Sampoorna Gita Pravachan
- Kathopanishad Pravachan
- Shiva Mahimna Pravachan
- Hanuman Chalisa

Audio Pravachans

- Prerak Kahaniya
- Sampoorna Gita Pravachan
- Eksloki Pravachan
- Eksloki Chanting

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - Sep'21

Vedanta Piyush - Aug '21

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

सुन्दरकाण्ड महायज्ञ
(ओनलाईन)

१५ अगस्त से १५ अक्टूबर २०२१.

प्रतिदिन सायं ७.00 बजे

YouTube चेनल पर प्रसारण

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी द्वारा

प्रतिदिन प्रातः ७.00 बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन
(शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी